Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. VIII, Issue No. XVI, October-2014, ISSN 2230-7540

साहित्य और दर्शन का सम्बन्ध

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. VIII, Issue No. XVI, October-2014, ISSN 2230-7540

साहित्य और दर्शन का सम्बन्ध

Dr. Saryu Sharma*

Assistant Professor (Hindi) Sanatan Dharma College, Ambala Cantonment, Haryana

सार – *''साहित्य मानव के भावों और विचारों का कोष है। आदिकाल से मानव अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता रहा है। दैनदिन आवश्यकताओं के अतिरिक्त मानव हृदय की यह सहज आकांक्षा भी रही है कि वह अपने भीतर उठने वाले भावों तथा विचारों को दूसरों तक प्रेषित करे। साहित्य का उद्भव इस आत्मप्रेषण की मौलिक प्राकृति से होता है। इसी आत्मप्रेषण प्रवृति का यह प्रणवीय स्थूल रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। कि साहित्य में इन दोनों की महत्ता है। बुद्धितत्व का साहित्य में उतना ही महत्व है जितना अनुभूतित्व का।*

----------X----------

संगीत तथा सम्बद्धता साहित्य की प्रथम अपेक्षाएं हैं जो स्पष्ट व बौद्धिक चेतना पर आश्रित है। प्रबन्ध काव्य, उपन्यास नाटक तथा निबन्ध की रचना बुद्धितत्वइ के बिना हो ही नहीं सकती। शिल्प संयोजन पूर्वा पर-निवहि, अलंकार गुणविधानादि में ताक बौद्धिक जागरूकता आवश्यकता रहती ही है, भावों के प्रसंग में भी उसकी सत्ता अपरिहार्य है। विचारहीन अनुभूति कोरा प्रलाप है। साहित्यकार की सृजन प्रक्रिया का विश्लेषण करने पर यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि उसकी ''अनुभूति'' तथा ''अभिव्यक्ति के मध्यवर्ती आकाश में विचारतत्त्व अपने आप सनिविष्ट हो जाया करता है।

''यही साहित्य के 'दर्शन' तथा विज्ञान से वैशिष्टन का प्रश्न उठता है दर्शन कथा विज्ञान भी बुद्धिप्रधान है, परन्तु ठीक उसी अर्थ में जिस अर्थ में साहित्य है। साहित्य की बौद्धिकता के साथ भाव प्रवणता संलग्न है। दर्शन कथा विज्ञान की बौद्धिकता भाव प्रणवता के स्थान पर वाकिकिता तथा विश्लेषणात्मक ग्रतिपति को प्रश्रय देती है। यही कारण है कि जहां साहित्य का विचारतत्व हृदय ग्राहय होता है, वहां दर्शन तथा विज्ञान का विचारतत्व बोध-गम्य रहता है। फलतः साहित्य की प्रभाविष्णुता इन दोनों की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ जाती है।

''दर्शन और साहित्य वस्तुत: एक ही सत्य की अभिव्यक्ति को दो पहलू है। दर्शन स्पष्ट ''सत्य को वाणी देता है और साहित्य अजुभूत सत्य को प्रथम सत्यदर्शी है और द्वितीय सत्यानुभवी। दर्शन में जिस सत्य का बोध होता है, साहित्य उसे हृदयगम करने के पश्चात शब्दबद्ध करता है। साहित्य में इस प्रकार चिन्तन के साथ अनुभूति का तत्त्व संयुक्त हो जाने के कारण उसका सत्य हृदयग्राहम जाता है। अतएवं सत्य की सामाजिक स्वीकृति के लिए जितना अधिक साहित्य उपभोगी है उतना दर्शन नहीं वस्तुतः साहित्य दर्शन से प्राप्त विचार से महत्त्वपूर्ण होती हैं और ज्ञानवृद्धि भी जनता को उस वर्ग विशेष की होती है जो दर्शन ग्रंथों का अध्ययन अनुशीलन करता रहता हैं। व्यापक प्रचार तथा समर्थन को लिए उनमें अनुभूति तत्त्व का समावेश परमावश्यक है क्योंकि सामान्य जनसमुह में बुद्धि की अपेक्षा समस्तरीयता अधिक होती है। अतः दर्शन को अपनी जनप्रतिष्ठा के लिए उसका आश्रय लेना पड़ता है।''

''साहित्य तथा दर्शन में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है यह देखा जा चुका है। प्रयोजन की दृष्टि से भी दोनों महत्त्वपूर्ण साम्य प्राप्त होता है। दोनों में वैयकिता का प्रधान्य होते हुए अन्ततः समष्टिगत रंजन तथा रक्षण की प्रतिष्ठा है। जिस प्रकार दार्शनिक अपने मन में उठने वाली जिज्ञासाओं की तुष्टि के लिए चिन्तन मनन करता है, उसकी प्रकार साहित्यकार अपने अन्त:करण में प्रोदभूत अनुभूतियों को स्वतःसुखाय अभिव्यक्त करता है। जिस प्रकार दार्शनिक की प्रतिपत्तियाँ अन्ततः सामाजिक ज्ञान व्यवस्था की आधारशिला बन जाती है, उसी प्रकार साहित्यकार की मान्यताएँ अन्ततः समाज की सांस्कृतिक निधि हो जाती है।

''दर्शन के प्रयोजन अनेकविद्य हैं कतिपय महत्वपूर्ण प्रयोजन ये हैं:

1. आत्मबोध
2. दुःखनाश

www.ignited.in

3. आनन्दप्राप्त

4. सतअसत की विवेचना

5. विश्वबोध

6. व्यवस्था

7. स्वयं साध्यता

8. श्रयतादात्मय

9. सामाजिक तथा आध्यात्मिक सुधार

10. सत्य सम्बन्धी व्यापक दृष्टिकोण

"दर्शन समस्त ज्ञानों तथा मानवीय अनुभवों के समाहार का पग्रयत्त करता है। इस रूप में दार्शनिक सत्य को स्वभाव, जीवन के अर्थ और उद्देश्य, चेतन को उद्भव स्तर तथा परिणामतय अन्य शीर्षस्थ समस्याओं के सम्बन्ध में बृहतर तथा व्यापकतर दृष्टिकोणों की खोज करता है। यहाँ पूर्णा पर बल दिया जाता है।"

दर्शन समस्त ज्ञानों तथा समस्त व्यक्तिगत और जातीय अनुभवों के एक पूर्ण प्रणाली में संयुक्त करने के प्रयत्न का प्रतिनिधित्व करता है। हमारे नित्य जीवन में प्राप्त आंशिक अनुभावात्मक सत्य को वह एक पूर्णता में संगठित करने का प्रयास करता है।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. राधा कृष्णन्, भारतीय दर्शन, पृ. 37

2. रामधारी सिंह 'दिनकर', अर्धनारीश्वर, पृ. 106

3. उपनिषद दर्शन, डॉ. वीरेन्द्र पाल सिंह, पृ. 129

Corresponding Author

Dr. Saryu Sharma*

Assistant Professor (Hindi) Sanatan Dharma College, Ambala Cantonment, Haryana